Jai Maa Saraswati Gyandayini
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed)
Journal home page: www.jmsjournals.in, **ISSN: 2454-8367**
Vol. 08, Issue-IV, April 2023

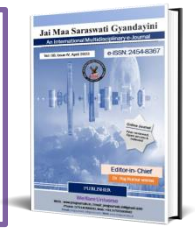

औपनिवेशिक भारत में सम्पत्ति का दोहन: एक ऐतिहासिक अध्ययन

(The Misuse of Wealth in Colonial India: A Historical Study)

Dr. Geeta Awasthi[a,*]

[a] *Assistant Professor, J.C. Mill Girls College, Birla Nagar, Gwalior, Jiwaji University, Gwalior, M.P. (India).*

KEYWORDS

आर्थिक दोहन, अंग्रेज, व्यापारी, कांग्रेस, भू-राजस्व, कर, धन, इंग्लैण्ड।

ABSTRACT

अंग्रेज भारत में एक व्यापारी के रूप में आए थे। उनके भारत में आने से पहले भारतीय व्यापार का विश्व में बोल-बाला था। प्रारम्भ में अंग्रेज भारत से मसालों का व्यापार करते थे, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने भारत के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। भारत में अपना राज्य स्थापित करने के बाद अंग्रेजों ने भारतीय धन एवं सम्पदा का दोहन करना आरम्भ कर दिया। वे भारत से कच्चा माल ससते दामों पर खरीद कर ब्रिटेन ले जाते तथा वहाँ के कारखानों में बने माल को अधिक किमत में यहाँ बेचकर मोटा मुनाफा कमाते। एक शासक के रुप में भी अंग्रेज भारत से धन का दोहन कर रहे थे। सर्व प्रथम दादा भाई नौरोजी ने इस भारतीय सम्पदा के होहन के विरुद्ध आवाज उठाई। दादा भाई नौरोजी की इस बात का अनुसरण किया जिसमें उन्होने इंग्लैण्ड द्वारा भारत के धन की निकासी की आलोचना करते हुए कहा था कि इंग्लैण्ड भारत का खून चूस रहा है। कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेताओं ने अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था की भी आलोचना की और भू-राजस्व व्यवस्था को उन इलाकों के किसानों की गरीबी के लिए उत्तरदायी माना जहाँ पर इस्तमुरारी बन्दोबस्त नही था। 1901 ई॰ में लार्ड कर्जन के नाम आर॰ सी॰ दत्त ने जो पत्र लिखे उनमें देश की गरीबी और अकालों के लिए रैयतवाडी पद्धति और रैयत पर मालगुजारी के अत्याधिक बोझ को ही जिम्मेदार माना है। इस प्रकार आर्थिक दोहन के द्वारा अंग्रेजों ने भारत का शोषण किया। इस आर्थिक दोहन के कारण ही कभी सोने कि चिडिया कहा जाने वाला भारत आर्थिक रूप से पिछड गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत में अकाल तथा भुखमरी से लाखों लोगों की जान गई।

अंग्रेज भारत में एक व्यापारी के रूप में आए थे। उनके भारत में आने से पहले भारतीय व्यापार का विश्व में बोल-बाला था। मध्यकालीन यूरोप की तरह भारत में भी आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। भारतीय व्यापार ईरान की खाडी और लाल सागर के सभी बंदरगाहों में प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध था। रुस के शासक पिटर महान ने भारतीय वाणिज्य के विषय में कहा था कि "भारतीय वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और जो व्याक्ति इस पर नियंत्रण कर सकता है, वही यूरोप का तानाशाह हो सकता है।"[1]

भारतीय व्यापारी यूरोप को काली मिर्च, गरम मसाले तथा कपडे का निर्यात करते थे। भारतीय सूती, रेश्मी कपडों की यूरोप में बहुत मांग थी। इस व्यापार के कारण विश्व के कोने-कोने से सोना मुद्रा के रूप में भारत में आता था तथा वापिस नहीं जाता था। लेकिन जब यूरोपिय कम्पनियाँ भारत में आकर व्यापार करने लगी तो भारतीय व्यापारियों को बहुत हानि हुई। पुर्तगाली, डच, अंग्रेज तथा फ्रेंच भारत में

Corresponding author
***E-mail:** geeta10awasthi@gmail.com (Dr. Geeta Awasthi). https://orcid.org/0009-0008-0841-0414
DOI: https://doi.org/10.53724/jmsg/v8n4.07
Received 16th Feb. 2023; Accepted 15th March 2023; Available online 30th April 2023
2454-8367 /©2023 The Journal. Publisher: Welfare Universe. This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

व्यापारी के रूप में आए, लेकिन बाद में इन कम्पनियों ने भारतीय व्यापार पर एकाधिकार कर लिया। अब ये कम्पनियाँ धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में भी हस्तक्षेप करने लगी। इन सभी युरोपियन कम्पनियों में अंग्रेज सबसे प्रमुख थे।

1757 ई॰ में प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद अंग्रेज भारत में व्यापारी से शासक बन गए। उन्होने भारत में ऐसे कानून बनाए जिनसे कि भारतीय व्यापार को हानी हुई तथा भारतीय व्यापार पर अंग्रेजों का एकाधिकार हो गया। भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने बाद वे जिन वस्तुओं का आयात करते थे उनका निर्यात करने लगे। हालांकी आयात ज्यादा बढ गया था फिर भी भारत 1862 ई॰ तक व्यापारिक संतुलन को अपने पक्ष में बनाए रखने में सफल हुआ। 1862 से 1905 ई॰ के बीच आयात 1288.23 करोड रूपए हो गया था। इस व्यापार से प्राप्त लाभ को इंग्लैड ले जाया गया। अंग्रेजो ने भारतीय वस्तुओं पर कर लगाया तथा अपनी वस्तुओं को कर मुक्त बेचा। इस प्रकार भारतीय धन का निष्कासन किया जाने लगा।[2]

अंग्रेजों द्वारा भारतीय सम्पत्ति के दोहन की अनेक विद्वानों ने आलोचना की तथा उस पर लेख लिखे। सन् 1988 ई॰ में सर जॉन स्ट्रेची ने भारतीय धन के दोहन की बडी स्पष्टता से व्याख्या की है। उन्होने इस विषय पर लिखा है कि "भारत सचिव भारत के सरकारी कोष के नाम पर बिल देता है तथा इसका भुगतान भारत के सार्वजनिक राजस्व की राशि से किया जाता है। इन्हीं बिलों के माध्यम से भारत में व्यापारियों तथा भारत सचिव को अपनी आवश्यक्तानुसार धन प्राप्त होता है।"[3]

अंग्रेजों द्वारा भारतीय धन की निकासी की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने तथा कुछ अर्थशास्त्रियों ने कडी आलोचना की। दादा भाई नौरोजी और रमेश चन्द्र दत्त ने इस भुगतान को इंग्लैण्ड द्वारा वसुला हुआ 'कर या चोथ' माना है और देश की बढती गरीबी के लिए इस सालाना दोहन को कारण माना है। कम्पनी द्वारा भारतीय धन के दोहन का ब्यौरा तैयार करना कठिन कार्य है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भारत में बनी वस्तुओं पर लागत खर्च या बिक्री मूल्य जो कम्पनी को प्राप्त होता था उसमें बहुत कम अंतर था। इससे कारीगरों को कुछ नही बचता था, लेकिन अंग्रेज इन वस्तुओं को बेचकर बहुत लाभ कमाते थे।[4]

1835 ई॰ से 1871 ई॰ के बीच भारत का कुल सालाना निर्यात का 41 लाख पाउंड था। यह 1871-1872 ई॰ में 21.03 करोड रूपए हो गया था। 1890-91 ई॰ में 16 से 18 करोड रहा। इसके बाद फिर तेजी से ऊपर उठा और 1891-92 ई॰ में यह 27.3 करोड रूपए हो गया। 1904-1905 ई॰ तक यह 1.94 करोड रूपए तक पहुंच गया था। इस निर्यात का खर्च भी भारतीय राजस्व से प्राप्त किया जाता था। भारतीय निर्यात के भावी खरीददार भारत सचिव से कांउसिल बिल खरीद लेते थे तथा इसके बदले में पाउंड दिए जाते थे।[5] फिर इन बिलों को भारत सरकार के राजस्व की राशि से रूपए में बदल दिया जाता था, और यह रूपया निर्यात के लिए भारतीय माल खरीदने के काम आता था। इस प्रकार भारत में रहने वाले अंग्रेज अधिकारी और व्यापारी रूपये में मिलने वाले अपने लाभांशों के बदले पाउंड बिल खरीदते थे। यह काम अंग्रेजों के अधिकार वाले बैंको के द्वारा किया जाता था। ये बैंक इन बिलों का भुगतान भारतीय निर्यात से मिलने वाले धन से करते थे। इस प्रकार भारतीय धन ब्रिटेन में चला जाता था।[6] उपनिवेशवाद के इस युग में इन चीजों का सालाना भुगतान भारतीय और ब्रिटिश लेखकों के बीच कटु वाद-विवाद का विषय बना रहा। ब्रिटिश पक्ष यह तर्क देते हैं कि यह भुगतान ब्रिटेन ने इस देश में जो पूंजी लगाई है उसका सुद और लाभांश के रूप में है। लेकिन भारत का पक्ष लेने वाले इतिहासकार इसे 'धन का दोहन' मानते हैं, क्योंकि इससे भारत का धन इंग्लैण्ड जाता है और इस धन से इंग्लैण्ड का विकास होता है।

मध्यकाल में भारतीय शासक या मुगल शासक जो धन कर के रूप में प्राप्त करते थे, वे इस धन को भारत के विकास पर ही खर्च करते थे। परन्तु अंग्रेजों द्वारा लिया जाने वाला कर इंग्लैण्ड में जाकर वहां के विकास में खर्च होता था। भारत में से उपज का एक भाग कर के रूप में इंग्लैण्ड भेजा जाता था। यह भारतीय उपज का 2 करोड पौंड था, इसे 'चोथ या खिराज' का नाम दिया जाता था। इसके बदले भारत को कुछ भी प्राप्त नही होता था। रैमजे मैक्डोनाल्ड ने इस विषय पर लिखा है कि "विदेशी सरकार के अधीन रहने का यह मुद्रा खर्च दो प्रकार से चिन्ताजनक है क्योंकि यह न केवल

भारतीय उपज की कीमत पर, बल्कि यह हमेशा के लिए भारत से बाहर चला जाता है।"[7]

अंग्रेजो द्वारा भारतीय धन का निकास अनेक माध्यमों से किया जाता था। 1901 ई॰ से 1902 ई॰ तक घरेलु मदों की कुल राशि 173 लाख पाउंड थी। जिसकी मुख्य मदे रेलमार्गो का ब्याज 43 लाख पाउंड, भारत ऋण पर ब्याज 30 लाख पाउंड, भण्डारण सामग्री की खरीद 19 लाख पाउंड और पेंशने 13 लाख पाउंड थी। वह राशि भी इसी में जोड सकते हैं जो भारत में रहने वाले अंग्रेज अधिकारी भी इंग्लैण्ड भेजते थे तथा भारत में निजी पूंजी निवेश पर प्राप्त लाभ का भी स्थानांतरण किया जाता था।8 इसके साथ-साथ और भी कई तरिकों के द्वारा अंग्रेजों ने भारतीय धन का दोहन किया। एक प्रसिद्ध अमेरिकन लेखक लेलैंड जैक्स ने इस विषय पर कहा है कि- "भारत पर जो बोझ लादे गए है, वे बहुत ही अन्यायपूर्ण थे। सैनिक विद्रोह दबाने का खर्च, लंदन में हर सरकारी मद जिसका सम्बंध भारत से निकाला जा सकता था, जिसमें इंडिया हाऊस की अंगीठी साफ करने वाले की मजदूरी और उन जहाजों का खर्च भी शामिल था जो चालु तो रहे पर जिनका इस्तेमाल युद्ध में नहीं किया गया। ये सारे खर्च भारतीय किसान के सिर पर लादे जाते थे।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने सम्पत्ति के इस दोहन की कडे शब्दों में निंदा कि है। विदेशी व्यापार और निर्यात की रोकडबाकी भारतीय राष्ट्रीय आय का एक छोटा सा हिस्सा ही थी। किन्तु दादा भाई नौरोजी ने 1895 ई॰ में बेल्बी आयोग के समक्ष कहा कि जिस सम्पत्ति का दोहन भारत से किया जा रहा है वह सम्भवतः रोकड बाकी का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका यदि देश के अन्दर ही पूर्ण रूप से प्रयोग किया जाता तो भारतीय आय को बढाया जा सकता था।9 भारतीय धन के निकास का प्रभाव भारतीय कृषि पर भी पडा क्योंकि भारतीय कृषि पर लगान सदा ऊँचा रखा गया ताकि राजस्व को बढाया जा सके। अंग्रेजों की राजस्व नीति के कारण कृषकों और काश्तकारों की स्थिति खराब होती चली गई। देश में खाद्य और आबादी का जो संतुलन था वह गडबडा गया। यही आगे चलकर इस बात के लिए जिम्मेदार रहा कि भारत में खाद्य के दाम बढते चले गए और 19 वीं शताब्दी के दौरान बार-बार भुखमरी और आकाल पडे।

धन की निकासी का भारतीय उद्योगों पर भी गहरा प्रभाव पडा। अब कम्पनी की वस्तुओं का आयात तेजी से बढने लगा। निर्यात की अपेक्षा भारत में आयात अधिक होने लगा। दादा भाई नौरोजी ने लिखा कि "पूंजी निर्माण बहुत धीरे-धीरे हो रहा है और भारत में सम्पत्ति के दोहन के कारण औद्योगिक प्रगति रुकती गई।"[10] आर॰सी॰ दत्त ने भी आर्थिक दोहन को अन्न के निर्यात और उससे देश में अन्न की कमी और मूल्य वृद्धि के साथ जोड़ा। उन्होने लिखा है कि "सालाना आर्थिक दोहन से इंग्लैण्ड में जो धन जाता है, वह प्रत्यक्ष रूप से भारत के राजस्व से जाता है। भारत में राजस्व का एक बडा हिस्सा जमीन से मालगुजारी के रूप में प्राप्त होता है।

भारत से किए जा रहे आर्थिक दोहन पर कांग्रेस ने भी कडी चिन्ता व्यक्त की। इस विषय में दादा भाई नौरोजी तथा आर॰ सी॰ दत्त ने खूब व्याख्यान दिए तथा सरकार का ध्यान भारतीय धन की इस निकासी की ओर दिलाया। भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने दादा भाई नौरोजी की इस बात का अनुसरण किया जिसमें उन्होने इंग्लैण्ड द्वारा भारत के धन की निकासी की आलोचना करते हुए कहा था कि इंग्लैण्ड भारत का खून चूस रहा है। कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेताओं ने अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था की भी आलोचना की और भू-राजस्व व्यवस्था को उन इलाकों के किसानों की गरीबी के लिए उत्तरदायी माना जहाँ पर इस्तमुरारी बन्दोबस्त नही था। 1901 ई॰ में लार्ड कर्जन के नाम आर॰ सी॰ दत्त ने जो पत्र लिखे उनमें देश की गरीबी और अकालों के लिए रैयतवाडी पद्धति और रैयत पर मालगुजारी के अत्याधिक बोझ को ही जिम्मेदार माना है। सरकार पर हमला करने के लिए कांग्रेस ने भू-राजस्व पद्धति को निशाना बनाकर बहुत दूरदृष्टि दिखाई क्योंकि भारत जैसे कृषि प्रधान देश की जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए इस बात से आसानी से तैयार किया जा सकता है। भारत की गरीबी के लिए राष्ट्रवादी नेता सम्पत्ति के दोहन और ग्रामीण औद्योगों के विनाश तथा भु-राजस्व व्यवस्था को ही जिम्मेदार मानते थे।[11]

दादा भाई नौरोजी ने कहा था कि क्या यह भारत के वर्तमान शासन की बहुत बडी निंदा नही है कि उसके लिए किए गए

खर्च के कारण भारत के लोग धन का सृजन नही कर पा रहे है? इससे भी बुरी बात यह है कि लोग लाखों की संख्या में मर रहे है, करोडों की संख्या में आधे पेट रहते है। भारत जो चीज पैदा करता है उसका एक हिस्सा हथिया लिया जाता है।[12] और इस हिस्से को इंग्लैण्ड भेज दिया जाता था।

इसके अलावा विदेशी पूंजी का भी भारत में निवेश किया रहा था जिससे कि अतिरिक्त लाभ पूंजी लगाने वालों को ही प्राप्त हो रहा था तथा भारत का यह धन विदेशों को जा रहा था। राष्ट्रवादी नेताओं ने विदेशी पूंजी निवेश का विरोध किया। उनका तर्क था कि भारतीय पूंजी को बढावा देने की बजाय विदेशी पूंजी ने उस पर कब्जा कर लिया था तथा उसके विकास की कोई सम्भावना नही थी। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी पकड दिनो दिन मजबुत हो रही थी।13 अंग्रेज भारत में अपनी सम्पत्ति का निवेश करते थे तथा भारत के धन को इंग्लैण्ड ले जाते थे। जिससे कि भारत की जनता गरीब होने लगी थी।

अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करके ही कांग्रेसी नेताओं ने पूंजी व सम्पत्ति के दोहन के विषय को केन्द्र बिंदु बनाया तथा अंग्रेजो द्वारा भारत में स्थापित आर्थिक नीतियों की आलोचना की। इन नेताओं ने इस बात पर बल दिया कि भारतीय सम्पत्ति का एक बडा हिस्सा भारत में कार्यरत ब्रिटिश सरकारी व सैनिक अधिकारियों के वेतन व पेंशनों के रूप में इंग्लैण्ड पंहुचता जा रहा था।[14]

इस तरह से भारतीय सम्पत्ति के विदेशों में जाने से नरम दल के कांग्रेस के नेताओं को सैद्धान्तिक आधार मिला तथा इसी आधार पर कांग्रेस ने सरकार का विरोध किया। अंग्रेज अनेक प्रकार के करों के माध्यम से भारत का धन लुट रहे थे। इन करों में भू-राजस्व कर, नमक कर, उत्पादन कर, शराब पर कर तथा स्टैम्प फिस भी राजस्व के प्रमुख साधन थे। इन करो का भार भारत के ग्रामीण वर्गा विशेष रूप से गरीब वर्ग पर पडा। इससे असंतोष पैदा हुआ और राजनीतिक आंदोलन का मुख्य आधार बना।[15] इन्ही विषयों को लेकर कांग्रेस बार-बार प्रस्ताव पास करती थी। 1988 ई॰ में कांग्रेसी नेताओं ने इस मुद्दे को उठाया कि करों को इस प्रकार बढाया जाता है कि गरीबों पर इसका भार लगातार बढता जा रहा है तथा नौकरशाही को इससे राहत मिलती है। इसलिए कांग्रेस ने लगान की दरों में कमी करने, नमक कर खत्म करने तथा कर लगाने एवं गरीबों अमीरों व मध्यम वर्ग द्वारा आयात शुल्क बढाने की मांग की।[16]

भारत का यह कर भार बहुत अधिक असहनीय था। भारत सरकार का खर्च बहुत अधिक था, जिसे भारतीय जनता को वहन करना पडता था। इस खर्च से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता बहुत क्षुब्द थे। देश पर कर्ज का बोझ बहुत अधिक था। यह 1860-61 ई॰ में 94.65 करोड रुयए था जो कि 1901-1902 ई॰ में बढकर 312 करोड रुपए हो गया था। इस कर्ज का कारण सैनिक तथा असैनिक खर्च था। यह खर्च भारतीय जनता से कर के रूप में लिया जाता था। भारत पर अधिकत्तर कर्ज ब्रिटेन द्वारा किए गए युद्धों से उत्पन्न हुआ था।17 इन युद्धों में अंग्रेजों द्वारा भारत में लडे गए युद्ध, अफगान युद्ध, बर्मा युद्ध तथा कम्पनी की हिस्सेदारी आदि शामिल थे। इन युद्धों पर खर्च किया जाने वाला धन भारतीय जनता से ही प्राप्त किया जाता था। इसलिए कांग्रेसी नेता अंग्रेजों का विरोध करते हुए कहते थे कि भारत पर सारा खर्च और कर्जा लादना अन्यायपूर्ण है।

इस प्रकार आर्थिक दोहन के द्वारा अंग्रेजों ने भारत का शोषण किया। इस आर्थिक दोहन के कारण ही कभी सोने कि चिडिया कहा जाने वाला भारत आर्थिक रूप से पिछड गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत में अकाल तथा भुखमरी से लाखों लोगों की जान गई। भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस आर्थिक शोषण का विरोध किया तथा ब्रिटिश सरकार के खिलाफ अनेक आन्दोलन किए।

संदर्भ सूची

1. ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग 1, पृ.स.॰ 153।
2. आर॰ एल॰ शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं॰ 119।
3. बिपिन चन्द्र, भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदभव ओर विकास, पृ०सं० 43।
4. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ.सं॰ 299।
5. आर॰ एल॰ शुक्ल, पूर्व उद्धृत, पृ.सं॰ 122।
6. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, पृ.स॰ 43।
7. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ.सं॰ 301।
8. सुमित सरकार, पूर्व उद्धृत, पृ.सं॰ 43।
9. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ.सं॰ 304।
10. वही, पृ.सं॰ 303।
11. सुमित सरकार, पूर्व उद्धृत, पृ.सं॰ 43।

12. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ॰सं॰ 316।
13. बिपिन चन्द्र, पूर्व उद्धृत, पृ॰सं॰ 68।
14. वही, पृ॰सं॰ 69।
15. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ॰सं॰ 322।
16. बिपिन चन्द्र, पूर्व उद्धृत, पृ॰सं॰ 69।
17. ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, भाग-2, पृ॰सं॰ 322।

****